हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम
हिंदी काव्य (सत्रीय कार्य (2017–18)

पाठ्यक्रम : बी.डी.पी / ई.एच.डी–02
सत्रीय कार्य कोड : ई.एच.डी–02 / टी.एम.ए / 2017–18
पूर्णांकः 100

नोट : सभी प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. निम्नलिखित पद्यांशों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए। 10x4=40

(क) पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।
मन मथुरा दिन द्वारिका काया कासी जाणि।
दसवां द्वारा देहुरा तामै जोति पिछांणि।।

ख) i) नहिं परागु, नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहि काल।
अली, कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।।

ii) मेरी भवबाधा हरौ, राधा – नागरि सोई ।
जा तन की झांई परैं, स्यामु हरित दुति होई।।

ग) मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है,
सुख स्वर्ग-सा जहाँ है, वह देश कौन-सा है ?
जिसका चरण निरंतर रतनेश धो रहा है,
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन-सा है?
नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं,
सींचा हुआ सलोना, वह देश कौन-सा है?

घ) यह धरती है उस किसान की
जो बैलों के कंधों पर
बरसात धाम में,
जुआ भाग्य को रख देता है
खून चाटती हुई वायु में
पैनी कसी खेत के भीतर
दूर कलेजे तक ले जाकर
जोत डालता है मिट्टी को
पाँस डालकर

और बीज फिर बो देता है।
नये बीच में नयी फसल के।
ढेर अन्न का लग जाता है।
यह धरती है उस किसान की।

2. निम्नलिखित में से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 600 शब्दों में दीजिए। 10x5=50

क) अपभ्रंश काव्य का परिचय दीजिए।

ख) कबीर की कविता के सामाजिक पक्ष पर विचार कीजिए।

https://www.facebook.com/IGNOUAssignmentGURU https://twitter.com/IGNOU_Guru
IGNOU ASSIGNMENT GURU

ग) गोस्वामी तुलसीदास की कविताओं की विशेषता बताइए।

घ) बिहारी के काव्य की विशेषता बताइए।

ङ) भारतेंदुयुगीन काव्य की विशेषता बताइए।

3. निम्नलिखित में से प्रत्येक पर लगभग 300 शब्दों में टिप्पणियाँ लिखिए : 5x2=10

(क) जयशंकर प्रसाद

(ख) प्रगतिवाद

IGNOU ASSIGNMENT GURU

IGNOU ASSIGNMENT GURU (2017-2018)

E.H.D.-2

हिन्दी काव्य

Disclaimer/Special Note: These are just the sample of the Answers/Solutions to some of the Questions given in the Assignments. These Sample Answers/Solutions are prepared by Private Teachers/Tutors/Authors for the help and guidance of the student to get an idea of how he/she can answer the Questions given the Assignments. We do not claim 100% accuracy of these sample answers as these are based on the knowledge and capability of Private Teacher/Tutor. Sample answers may be seen as the Guide/Help for the reference to prepare the answers of the Questions given in the assignment. As these solutions and answers are prepared by the private teacher/tutor, so the chances of error or mistake cannot be denied. Any Omission or Error is highly regretted though every care has been taken while preparing these Sample Answers/ Solutions. Please consult your own Teacher/Tutor before you prepare a Particular Answer and for up-to-date and exact ~~information, data and solution. Student should must read and refer the official study material provided by the university.~~

नोटः सभी प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

प्रश्न 1. निम्नलिखित पद्यांशों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

(क) पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।
मन मथुरा दिन द्वारिका काया कासी जाणि।
दसवां द्वारा देहुरा तामैं जोति पिछांणि।।

उत्तर– संदर्भ–प्रस्तुत पद्यांश भक्तिकालीन निर्गुण शाखा के भक्त कवि कबीरदास द्वारा रचित है। इस पद के अंतर्गत कबीर ने समाज में व्याप्त धार्मिक आडंबरों तथा मूर्तिपूजा का खंडन करके उसे व्यर्थ बताने का प्रयास करते हुए इस प्रवृत्ति पर तीखा व्यंग्य करते हुए कहा है–

व्याख्या–कि यदि पत्थर की पूजा करने से ईश्वर की प्राप्ति होती हो तो मैं सर्वप्रथम पूरे–के–पूरे पहाड़ की पूजा करने लगूंगा। इस प्रकार के पत्थर की पूजा करने से तो अच्छा है घर में रखी हुई आटा पीसने वाली चक्की के पत्थरों (पाटों) की पूजा की जाए, जिससे गेहूं पीसकर निकलता है और उस आटे की रोटियों को समस्त संसार खाकर अपनी भूख शांत करता है। कहने का आशय यह है–मूर्ति पूजा पत्थर पूजा व्यर्थ के धार्मिक आडबंर हैं, इससे समाज के लोगों को दूर रहकर अपनी वास्तविक भक्ति (ज्ञान) के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए।

दूसरे दोहे में कबीर पुनः धार्मिक मिथ्याडंबरों की पोल खोलते हुए बताते हैं कि लोगों का यह मानना है हमारा मन सदैव मथुरा में रमना चाहिए जहां कृष्ण निवास करते थे और जीवन में एक दिन के लिए द्वारिका में भी व्यतीत करना चाहिए और मरने के लिए इस शरीर का त्याग काशी में जाकर करना चाहिए, इससे मुक्ति तथा सद्‌गति प्राप्त होती है। किन्तु इन सबका विरोध करते हुए कबीरदास अपने अंदर व्याप्त दसवें द्वार (चक्र) को जागृत करके (या जानकर) उसकी ज्योति में ही अपनी परछाई की पहचान करने बी बात करते हैं। अर्थात परमात्मा सभी के अंदर व्याप्त है उसे बाहर खोजने या मुक्ति की आशा से ढूंढ़ने की बजाय अपने अंदर ही उसकी छवि की पहचान करके उसे प्राप्त करने की उत्कंठा रखनी चाहिए।

विशेष–(1) कबीर अपने ज्ञान के माध्यम से समाज को सही दिशा व दशा देने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं।
(2) भाषा पंचमेली खिचड़ी है, जिसमें सधुक्कड़ी भाषा का प्रभाव
(3) 'प' शब्द की आवृत्ति के कारण प्रथम दोहे में अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
(4) दूसरे दोहे में कबीर की रहस्यवादी तथा दार्शनिक भावना उजागर होती है।

(ख) *(i)* नाहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली, कली ही सौं बंध्यो, आगे कौन हवाल।
***(ii)* मेरी भवबाधा हरो, राधा-नागरि सोई।**
जा तन की झांई परैं स्यामु हरित दुति होई।।

उत्तर–शब्दार्थ–पराग–फूल की रज। मधु–शहद। अलि–भ्रमर। हवाल–हाल, दशा।

प्रसंग–बिहारी लाल द्वारा रचित उक्त दोहा उनकी सतसई से लिया गया है। भ्रमर के माध्यम से कवि ने नायक की आसिक्त का चित्रण इसमें किया है। कवि कहता है–

व्याख्या–हे भ्रमर, तू कैसा कामी है कि अभी तो यह कली ही है फूल नहीं बनी है। इसमें न तो पुष्प–रज है, न मीठा मधु है और न इसके पूर्ण विकसित होने का ही समय आया है। यदि तू अभी से इस कली के मोह–पाश में, रूप–यौवन में बंध गया है तो आगे चलकर जब यह पूर्ण विकसित योवना हो जायेगी तो पता नहीं तेरा क्या हाल होगा।

दूसरे दोहे में–कवि बिहारी राधा–नागरी से अपनी नाव–बाधा को दूर कर समस्त कष्टों का अंत करने की प्रार्थना करते हैं, जिसके शरीर की छाया अथवा परछाईं मात्र पड़ जाने से ही श्याम–हरित द्युति का आभास देने लगते हैं। दूसरे शब्दों में कवि 'भव बाधा' अर्थात जन्म–मरण के कष्टों से भक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्ति का अभिलाषी है। 'भव' का एक अर्थ 'जन्म' होता है तथा दूसरा 'जगत'। इसलिए कवि अपने ईष्ट देव से सांसारिक कष्टों तथा आपत्तियों का हरण करके मुक्ति अथवा जन्म–जन्मातर में भक्ति की कामना (द्वितीय अर्थ के संदर्भ में) भी करता है।

उत्तराद्ध पद का अर्थ अन्य प्रकार से भी लिया जा सकता है–राधा की छाया से श्याम फीके पड़ जाते हैं अर्थात् (हरित–द्युति) हो जाते हैं अथवा राधा का सौन्दर्य या वैभव श्याम की विभूति को फीका कर देता अर्थात भक्तों की दृष्टि में राधा का वैभव या सौन्दर्य अधिक लगने लगता है। ?

विशेष–(1) प्रथम दोहा कविवर बिहारी ने राजा जयसिंह की बड़ी रानी के आग्रह पर लिखकर राजा के अंत:पुर में भिजवाया था।

(2) मुग्धा नायिका पर नायक की आसक्ति का चित्र है।

(3) अन्योक्ति अलंकार है।

(4) किंवदन्ती है कि राजा जयसिंह ने इसी दोहे पर प्रसन्न होकर बिहारी को अपने राजदरबार में राजकवि नियुक्त किया था।

(5) दूसरे दोहे के भिन्न–भिन्न प्रकार के अर्थ के साथ कवि का रंग–विषयक ज्ञान भी पाठक को विदित होता है कि 'नीला' व 'पीला' रंग मिलने से 'हरा' रंग बन जाता है।

(6) 'झांई', 'स्यामु' तथा 'हरित–दुति' पदों में श्लेष अलंकार है तथा समस्त दोहे में या व्यलिंग हैं क्योंकि समर्थनीय अर्थ का समर्थन हो रहा है।

(ग) मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है,
सुखा स्वर्ग-सा जहाँ है, वह देश कौन-सा है?
जिकसका चरण निरंतर रतनेश धो रहा है,
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन-सा है?
नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही है,
सींखा हुआ सलोना, वह देश कौन-सा है?

उत्तर–संदर्भ–प्रस्तुत पंक्तियां प्रकृति के चितेरे कवि सुमित्रानंदन पंत की कविता से उद्धृत है। इन पंक्तियों में कवि भारतवर्ष की प्रशंसा करते हुए उसके भौगोलिक महत्त्व का बखान कर रहा है–

व्याख्या–कवि का कहना है–वह कौन–सा देश है जो मनमोहिनी प्रकृति की गोद में बसा हुआ है तथा उसमें स्वर्ग के समान सुख का भी अनुभव होता हो? जिसके पैरों को सदैव समुद्र धोता रहता है और उसका मुकुट गिरिराज हिमालय है। वह देश कौन–सा है जहां नदियां सदा स्रोतस्विनी बनकर कल–कलकर बहकर जन–जन को तृप्त करती हैं और किसान इन्हीं नदियों के जल से अपने खेतों की सिंचाई कर फसलों को लहलहता देखकर मुग्ध हो जाता है। वह देश केवल भारत ही है जो प्रकृति की गोद में बसकर स्वर्ग समान सुख का अनुभव लोगों को कराता है। जिसके चरणों को समुद्र धोता है तथा इसका मुकुट हिमालय की दूर–दूर तक फैली पर्वतमालाएं हैं, जिससे निकलने वाली नदियां निरंतर अमृत बहाती हुई जन–जन के कंठ तथा धरती को भी तृप्त करती हैं। अर्थात् कवि भारतवर्ष की प्रशंसा अपने शब्दों के माध्यम से करता हुआ उसकी भौगोलिक स्थिति का भी वर्णन प्रस्तुत कर रहा है।

विशेष–(1) भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति का चित्रण कवि ने इन पंक्तियों के माध्यम से किया है।

(2) भाषा सरल, सहज बोलचाल वाली खड़ी बोली है।

(3) प्रश्नवाचक वाक्यों के आधार पर कविता को प्रस्तु करना कवि की अद्भुत काव्य क्षमता को दर्शाता है।

(4) स्वर्ग–सा, कौन–सा में उपमा अलंकार की छवि दर्शनीय है।

(घ) यह धरती है उस किसान की
जो बैलों के कंधों पर

बरसात धाम में
जुआ भागय को रख देता है
खून चाटती हुई वायु में
पैनी कसी खेत के भीतर
दूर कलेजे तक ले जाकर
जोत डालता है मिट्‌टी को
पाँस डालकर

और बीज फिर बो देता है।
नये बीच में नयी फसल के।
ढेर अन्न का लग जाता है।
यह धरती है उस किसान की।

उत्तर–संदर्भ एवं प्रसंग–प्रस्तुत पद्यांश आधुनिक युग के प्रगतिशील धारा के महत्त्वपूर्ण कवि केदारनाथ अग्रवाल द्वारा रचित कविता 'यह धरती है उस किसान की' से उद्धृत है। यह कविता डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा संपादित ग्रंथ 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल' नामक ग्रन्थ में संग्रहीत है।

केदारनाथ अग्रवाल को कृषक संवदेना का कवि माना जाता है। उन्होंने देश की इस 80 प्रतिशत आबादी के जीवन, उनके सुख एवं दु:ख को करीब से महसूस किया था। अपनी इस कविता में व कृषक जीवन की संवदेनाओं को अभिव्यक्ति देने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार एक किसान परिश्रम कर मिट्‌टी से अन्न उपजाता है। प्रस्तुत पद्यांश भी इसी संदर्भ में है, कवि कहता है–

व्याख्या–कवि कहता है यह धरती उस किसान की है जो बैलों के कंधों पर हल रखकर मिट्‌टी को जोतता है, मिट्‌टी में नये बीज बोता है और नये वर्ष में अन्न के ढेर लगा देता है। वस्तुत: केदारनाथ अग्रवाल अपनी इस कविता में किसानों द्वारा किए जा रहे अथक परिश्रम को रेखांकित करना चाहते हैं। वह लोगों को यह समझाना चाहते हैं कि किसान बिना किसी द्वेष के अपना कर्म करता है। हर नये वर्ष अपने खून-पसीने को एक करके अन्न के ढेर लगा देता है किन्तु यह समाज उसकी पीड़ा को नहीं समझता। संपन्न वर्ग उसका शोषण करने से चुकता नहीं, उसे प्रतिफल में कुछ नही मिलता। इसलिए कवि कहता है कि यह धरती उसी की है जो इस पर मेहनत करता है और सबको अन्न देता है।

विशेष–कवि अपनी इस कविता में किसान और जमीन के अटूट बंधन को रेखांकित करते हुए व्यवस्था के शोषणवादी रूप में परिवर्तन चाहता है और कृषकों को उनका अधिकार दिलवाना चाहता है।

भाषा सरल, सहज व भाव एवं विचारों को अभिव्यक्ति देने वाली है। कवि बात को घुमा-फिरा कर नहीं सीधे-सीधे अभिधा में ही कहता है।

प्रश्न 2. निम्नलिखित में से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लगभग 600 शब्दों में दीजिए।

(क) अपभ्रंश काव्य का परिय दीजिए।

उत्तर–हिन्दी एक आधुनिक आर्य-भाषा है और आधुनिक आर्य-भाषाओं की जननी 'अपभ्रंश' को माना जाता है और इसके साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अपभ्रंश काव्य की बहुत-सी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और काव्यरूप हिन्दी के आदिकालीन काव्य में स्पष्टत: मौजूद हैं। 'अपभ्रंश' अर्थात् 'अशुद्ध', 'विकृत' या 'भ्रष्ट'। भाषा में सर्वप्रथम इसका प्रयोग उस 'शब्द' के लिए होता था जो भाषा के सामान्य मानदण्ड से निम्न कोटि का होता था लेकिन समय व परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ इसका विकास एक स्वतंत्र भाषा के रूप में हो गया। 8वीं से 14वीं शताब्दी के बीच रचित साहित्य अपभ्रंश भाषा का माना जाता है। विकास-क्रम की दृष्टि से 'अपभ्रंश' 'प्राकृत' के बाद की भाषा है, जिसको हम निम्नांकित विकास चित्र द्वारा भली-भाँति समझ सकते हैं–

1500 ई॰पू॰ से 500 ई॰पू॰ तक की प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ–

छन्दस→संस्कृत। आगे इनका विकास 500 ई॰पू॰ से 1000 ई॰ तक हुआ जिनको मध्यकालीन आर्य भाषाओं के नाम से अभिहित किया गया। वे हैं–

पालि→प्राकृत→अपभ्रंश, तत्पश्चात् 1000 ई॰ से अब तक आधुनिक आर्य भाषाओं, सिंधी, गुजराती, पंजाबी, ब्रज, अवधी आदि का विकास 'अपभ्रंश' से ही हुआ। इस प्रकार भाषायी विकास का जो स्वरूप उभरकर हमारे सम्मुख उपस्थित होता है उसका समग्र रेखाचित्र इस प्रकार दिया जा सकता है–

छन्दस→संस्कृत→पालि→प्राकृत→अपभ्रंश→आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ, जैसे–सिंधी, गुजराती, पंजाबी, ब्रज, अवधी आदि।

https://www.facebook.com/IGNOUAssignmentGURU https://twitter.com/IGNOU_Guru

हालाँकि बहुत से विद्वतजन विकास की उपरोक्त प्रक्रिया द्वारा सहमत नही हैं। उनका अपना मानना है कि 'अपभ्रंश' अपने विकसित रूप में आने से पूर्व एक क्षेत्रीय भाषा के रूप में क्षेत्र विशेष में, प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के समय भी विद्यमान था लेकिन इन मतभेदों के बावजूद भी इतना सर्वमान्य है कि साहित्यिक अपभ्रंश भाषा का विकास लोकभाषा से ही हुआ। यहाँ एक अन्य तथ्य ध्यान देने योग्य है कि तद्युगीन राजनीतिक शक्तियों, जैसे–पाल, राष्ट्रकूट, सोलंकी के चालुक्य आदि ने अपभ्रंश के कवियों को संरक्षण देकर प्रकारान्तर से अपभ्रंश भाषा के साहित्यिक स्वरूप के विकास में अपना सकारात्मक योगदान दिया। अपभ्रंश के प्रतिष्ठित कवि सह, कण्ह एवं चौरासी सिद्धों ने पालों का तथा पुष्पदन्त एवं स्वयंभू ने राष्ट्रकूटों का संरक्षण प्राप्त कर अपभ्रंश साहित्य को समृद्ध बनाया।

इस प्रकार जहाँ बंगाल में सरहपा व कण्हपा जैसे अपभ्रंश कवि अपभ्रंश साहित्य का निर्माण कर रहे थे वहीं विद्यापति व ज्योतिरीश्वर ठाकुर मिथिला में एवं अद्दहमाण मुल्तान में इसे काव्य–भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में लगे हुए थे। अतएव हम देखते हैं कि अपभ्रंश का काव्य–भाषा के रूप में प्रसार बहुत-से क्षेत्रों में था जिसके चलते इसके विविध क्षेत्रीय रूपों में विविधता मुखरित होती है क्योंकि कोई भी कवि अपनी स्थानीय बोलियों से अवश्य प्रभावित होता है। इसके परिणामस्वरूप अपभ्रंश को पश्चिमी एवं पूर्वी अपभ्रंश में विभाजित भी किया जाता है। पूर्वी अपभ्रंश में नाथ व सिद्धों की रचनाएं एवं पश्चिमी अपभ्रंश में जैन कवियों की रचनाएं आती हैं। अपभ्रंश के इस विभाजन के अतिरिक्त भी समय या काल के अनुसार इसका विभाजन 'पूर्ववर्ती' एवं 'परवर्ती' अपभ्रंश के रूप में किया जाता है। 'पूर्ववर्ती अपभ्रंश' के अन्तर्गत दसवीं सदी से पूर्व की कृतियों को स्थान दिया जाता है जबकि परवर्ती अपभ्रंश, जिसे 'अवहट्ठ' या 'देश्यभाषा मिश्रित अपभ्रंश' भी कहा गया, के अन्तर्गत बाद की कृतियाँ जैसे–**अद्दहमण** का 'संदेशरासक', **दामोदर पण्डित** का 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण', **ज्योतिरीश्वर ठाकुर** का 'वर्णरत्नाकर' एवं 'विद्यापति' की 'कीर्तिलता' व 'कीर्ति पताका' उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 8वीं से 14वीं शताब्दी तक के काल में सुदूर दक्षिण के अतिरिक्त पूर्ण भारत में अपभ्रंश काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

(ख) कबरी की कविता के सामाजिक पक्ष पर विचार कीजिए।

उत्तर–कबीर चाहते थे कि मनुष्य अज्ञान और अंधविश्वास के कारण तंत्र-मंत्र और जादू-टोनों का शिकार न हो, वरन् अपने विवेक से स्वतंत्र निर्णय लेना सीखे। उनकी साखियों में साक्षीकृत अनुभव ज्ञान की ही प्रतिष्ठा है जिससे संसार के सब द्वंद्व निबट जाते हैं। वे सच्चे अर्थों में प्रेम धर्म के प्रचारक थे। ज्ञान उसी प्रेम धर्म तक पहुँचाने का एक साधन मात्र है।

आत्मा की परमात्मा के प्रति प्रणयानुभूति के बहुत ही मादक और रंगीन चित्र कबीर ने अंकित किए हैं–

पिया को रूप कहां लगि बरनूं रूपहि माहिं समानी।
जो रंग रंगे सकल छवि छाके तन मन सभी भलानी।।

विरहिणी आत्मा की वेदना के अंकन में कबीर मार्मिकता की चरमावस्था पर पहुँच गए हैं–

कै बिरहिन कूं मीच दै कै आपा दिखलाई।
आठ पहर का दाझणा मों पै सहा न जाई।

कबीर के काव्य में प्रयुक्त रूपक लोकजीवन के अनुभूत क्षेत्रों से चुने गए हैं इसलिए अनुभूति की संप्रेषणीयता में विशेष रूप से सफल सिद्ध हुए हैं। खेती, कताई, बुनाई, रंगाई, विवाह, पनघट, फाग आदि से संबंधित उपमानों की योजना द्वारा उन्होंने अपने रूपकों की रचना की है।

कबीर की वाणी में स्थान-स्थान पर राम शब्द का प्रयोग हुआ है, पर उनका राम दशरथ पुत्र न होकर निराकार बह्म का प्रतीक है। भावभक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए विरोधी तत्त्वों के सम्मिश्रण से निर्मित था। उनमें अद्वैतवादी दार्शनिकों जैसी ज्ञान गुरुता, वैष्णवों जैसी आस्था और उदारता, हठयोगियों जैसी साधना-निष्ठा, फकीरों जैसी मस्ती और कवियों जैसी भावविह्वलता थी। वे जन्म से ही हिंदू-मुस्लिम एकता के संस्कारों से युक्त थे। उन्होंने नाथों से गुरु महिमा, नाद-बिंदु की उपासना, हठयोगपरक साधना, जाति-पाँति, भोगवाद और बाह्याचार का खंडन, रहस्यानुभूति और वैचारिक तथा आचारिक शुद्धि की प्रेरणा ग्रहण की, तो रामानंद से राम नाम का मंत्र और शरणागति (प्रपात) का मार्ग ग्रहण किया। उनकी रहस्यानुभूति पर रामानंद संप्रदाय में प्रचलित रसिक भक्ति या माधुर्य भक्ति का प्रभाव देखा जा सकता है। सगुणेपासक, अवतारवाद और मूर्तिपूजा के खंडन के लिए उन्होंने शंकर के अद्वैतवाद से अनुप्राणित निर्गुणोपासना का मार्ग अपनाया है। संसार के नानात्व को नकारकर एकत्व का साक्षात्कार कराने के उद्देश्य से उन्होंने सर्वव्यापी, निर्विकार, निरंजन, निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया है। वे भेद में अभेद का और अनेकता में एकता का दर्शन करते थे। उनका मानवतावाद इसी अभेद-दर्शन की सुदृढ़ भित्ति पर टिका है। सत्य, अहिंसा, प्रेम और करुणा इसी मानवतावादी जीवन दृष्टि के समपोषक, सनातन मानव मूल्य हैं, जिनकी मनोरम अभिव्यक्ति कबीर की बानियों में अनेक रूपों में हुई है।

IGNOU ASSIGNMENT GURU

कबीर कोरे सिद्धांत ज्ञान में विश्वास नहीं रखते थे। उनका ज्ञान भी अनुभूतिपरक है। इस ज्ञान का प्रेम से प्रगाढ़ संबंध है। ज्ञान की आँधी से माया-मोह का नाश होता है और परमात्मा-प्रेम का उदय हो जाता है—

संतो भाई आई ग्यान की आँधी।

भ्रम की टाटी सबै उड़ानी माया रहै न बाँधी।

कबीरदास ने वेद, पुराण और कुरान आदि के रूप में प्राप्त पुस्तकीय या शास्त्रीय ज्ञान का खंडन किया है। वे प्रत्यक्ष ज्ञान में या 'आंखिन की देखी' में आस्था रखते हैं, 'पोथिन की लेखी' में नहीं। उन्होंने जीवन के प्रति वस्तुनिष्ठ, विवेकसंगत, निस्संग ओर निर्विकार दृष्टिकोण अपनाया था। वे मनुष्य की निजता को जगाना चाहते थे।

(ग) गोस्वामी तुलसीदास की कविताओं की विशेषता बताइए।

उत्तर—तुलसीदास ने आपने पूर्ववर्ती काल में प्रचलित मुक्तक एवं प्रबंधकाव्य रूपों को अपने मन मुताबिक ग्रहण किया और काव्य के तीनों मुख्य रूपों- मुक्तक, गीति एवं प्रबंध—में उन्होंने कवितावली', 'दोहावली', कृष्णगीतावली आदि ग्रंथों की रचना की। 'विनय पत्रिका' उनके गीतिकाव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है तो 'रामचरितमानस' श्रेष्ठ प्रबंध काव्य का।

अपनी मुक्तक रचनाओं में तुलसीदास ने कवित्त-छप्पय शैली का सुन्दर प्रयोग किया है। इसके साथ इनके अन्तर्गत कवि ने पूरी कथा का विधान नहीं किया अपितु कथा के मार्मिक अंगों का ही पदों में बखान किया है। ऐसा करने की प्रेरणा कवि ने बहुत कुछ 'सूरदास' के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'सूरसागर' से ली है।

'विनय पत्रिका' गीतिकाव्य का सुन्दर उदाहरण है। इसमें भक्ति की अमृतधारा प्रवाहित है जिसका एक बार रसपान कर लेने से चित्त के सभी विकार दूर हो जाते हैं। इसके अन्तर्गत कविता ने धना श्री, बसंत, भैरव, मारू आदि राग-रागनियों का सुन्दर प्रयोग किया है। इसके अन्तर्गत कवि अपने आराध्य देव राम के दरबार में अपने हृदय की गुहार पत्रिका के माध्यम से लगाते हैं। कवि ने इसके अन्तर्गत सभी देवताओं की वन्दना के साथ-साथ लक्ष्मण, सीता आदि के समक्ष अपने भावों को मार्मिक विनय के गीतों द्वारा अभिव्यक्त किया है।

तुलसीदास का 'रामचरितमानस' प्रबंधकाव्य का सुन्दर उदाहरण है। हालांकि कुछ विद्वान इसे 'पुराण काव्य' या फिर 'चरितकाव्य' सिद्ध करने का प्रयास करते हैं जोकि उचित नहीं है क्योंकि भारतीय आचार्यों की दृष्टि में पुराण काव्य नहीं होते, मात्र कथा कह देना कविता नहीं हो जाता। लेकिन इतना जरूर माना जा सकता है कि उनके इस ग्रन्थ पर पौराणिक-शैली का प्रभाव आवश्यक रूप से है। तुलसीदास ने स्पष्ट लिखा है कि वे राम की कथा को आधार बना कर एक प्रबंधकाव्य की रचना कर रहे हैं-

"आखर-अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना।"

और उनका यह कृत्य लोक हितकारी होगा-

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई॥"

इसकी लोकहितकारी भावना एवं राम का लीलावतार 'मानस' को 'चरितकाव्य' से दूर ले जाती है। 'मानस' का सुगठित कथानक और रस की अखण्ड धारा इसे उच्चकोटि के 'प्रबंधकाव्य' के आसन तक पहुँचने में मदद करती है। इसके अतिरिक्त प्रबंधकाव्य के अन्य लक्षण, जैसे-धीरोदत्त नायक, उदात्त उद्देश्य, उत्तम शैली, गंभीर रसधारा आदि सभी 'रामचरितमानस' में सहज ही मिलते हैं। अतएव 'मानस' एक उच्च कोटि का प्रबंध काव्य है। इसमें कोई दो राय नहीं होनी चाहिए।

तुलसी के काव्य के काव्य रूप के निर्धारण के पश्चात् बारी उनकी काव्य शैलियों पर विचार करने की है। वस्तुत: जिस समय तुलसी ने काव्य रचना का कार्य प्रारम्भ किया उस समय बहुत-सी काव्य शैलियाँ तुलसीदास के समक्ष उदाहरण के रूप में प्रस्तुत थीं। जिनमें वीरगाथात्मक छप्पय की शैली, विद्यापति एवं सूरदास की गीत शैली, गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया शैली, कबीरदास की दोहा शैली एवं ईश्वरदास की दोहा-चौपाई शैली महत्त्वपूर्ण थी। तुलसीदास ने अपने काव्य की रचना इन सभी शैलियों में की है।

तुलसी काव्य में वीरगाथात्मक छप्पय शैली का उदाहरण द्रष्टव्य है-

परन चोर चटकण चकोट आदि उर सिर बज्जत

विकट कटक विद्दरत वीर वादि जिमि गज्जत

लंगूर लपेटत पटकि पट, जयति राम जय उच्चरत।

तुलसीदास पवननंदन अटल तुद्द क्रुद्ध कौतुक हरत।

'गीतावली एवं 'विनय पत्रिका' विद्यापति और सूरदास की गीतिशैली पर आधारित रचनाएँ हैं। 'कवितावली' के अन्तर्गत गंग और भाटों की कवित्त-सवैया शैली के दर्शन होते हैं-

"बालधी बिसाल विकराल ज्वाल जाल यानौ,

× × × ×

लंकलीलिवो को काल रसना पसारी है।"

गोरों गरूर गुमान भरो यह, कौसिक छोटो सो ढोटो है काम

इन सबके अतिरिक्त 'रामचरितमानस' एवं 'दोहावली' में नीति-शैली की सूक्तियों की भरमार है-

"धीरज धर्म मित्र अरू नारी। आपतकाल परखिए चारी।"

मानस की रचना दोहा-चौपाई शैली में कवि ने की है। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ अवधी है-

"अमियमूरिमय चूरन चारू। समन सकल भवरूज परिवारू।"

तुलसीदास की इस शैलीगत कुशलता पर *आचार्य रामचंद्र शुक्ल* जी ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखा है-

गोस्वामी जी के प्रादुभार्व को हिन्दी काव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिन्दी काव्य की शक्ति का प्रसार इनकी रचनाओं से ही पहले-पहल दिखाई पड़ा।

(घ) बिहारी के काव्य की विशेषता बताइए।

उत्तर–बिहारी ने अपने काव्य में भाव-विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम ब्रज भाषा को बनाया। बिहारी के काल तक आते-आते ब्रजभाषा काव्य भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी थी। बिहारी इसका शृंगार रतिकालीन अलंकारों व चमत्कारिता से करते हैं। सार्थक शब्दों के चयन द्वारा इसकी व्यंजना शक्ति को बढ़ाते हैं। शब्दों को अपने भाव-विचारों के अनुरूप दो प्रकार से तराशते हैं। एक तो वे शब्दों का अनुकूलन करते हैं। दूसरे, कुछ शब्दों में प्रत्यय जोड़कर उन्हें नूतन संस्कार प्रदान करते है। यथा–

'परझाई' के स्थान पर 'झांई' शब्द का प्रयोग शब्द अनुकूलन का उदाहरण है व सतरौ हैं या 'सवादिल' जैसे विशेषण जोड़कर शब्दों को नव संस्कारित किया। उनके शब्दों को नूतन संस्कार देने की प्रवृत्ति के संदर्भ में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का निम्नांकित कथन महत्त्वपूर्ण है–

ध्वन्यात्मक और व्याकरणिक दोनों स्तरों पर कवि की यह भाषिक तराश रीतिकालीन मनोवृत्ति और मुगलकालीन कला की बारीक पसंद के समानान्तर चलती है। इस संदर्भ में बिहारी को रीतिकालीन काव्य-भाषा का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

इनके अतिरिक्त बिहारी अपनी काव्य भाषा में विशेषण का प्रयोग अलग रूप से करते हैं जिसके द्वारा वे अनुभवों को सीधे प्रेषित करते हैं। काव्य संदर्भ के अनुरूप उन विशेषणों की मीनाकारी व नक्काशी करते हैं। वे 'औहें' जैसे प्रत्ययों को जोड़कर संज्ञाओं व विशेषणों के भी विशेषण निर्मित करते हैं। ब्रज भाषा के 'सतर' शब्द का नया रूप बिहारी 'सतरौहैं' बनता है और अपने दोहे में वे इसका सटीक प्रयोग करते हैं।

"सकुचि न रहियै स्याम, सुनि ए सतरौहें बेन।"

ब्रज में 'सतर' का अर्थ 'सीधा खड़ा हुआ' होता है। यहाँ उस नायिका के संदर्भ में आया है जो ऊपर से तो क्रोधित है किन्तु भीतरी प्रेम से कोमल है। इसी प्रकार वे 'ललयौं हें', 'खिसों हें', 'रिसौ हें', 'हसौ हैं' आदि अन्य शब्द-रूपों का सार्थक प्रयोग अपने काव्य में करते हैं और भाव-विचारों के प्रेषण का महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं।

बिहारी की काव्य भाषा की सृजनात्मकता में क्षेत्रीयता की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वे लोकप्रिय बुन्देलखण्डी शब्द रूपों के साथ मथुरा-आगरा की और रूप प्रधान केन्द्रित ब्रजभाषा का कुशल प्रयोग करते हैं जिससे उनकी काव्य भाषा व ब्रज संस्कृति का अटूट संबंद्ध उभरकर सामने आता है। अत: उनके काव्य में भावों, चित्रों, वर्णनों, आदि में ब्रज संस्कृति के सहज व सरल चित्र साकार हो उठते हैं। राधा-कृष्ण की उपासना व शृंगार मिश्रित परंपरा को बिहारी संस्कार रूप में सहज ही प्राप्त करते हैं जिससे उनकी काव्य भाषा में जहाँ शास्त्रीयता झलकती है वहीं ब्रजभूमि के स्वच्छंद जीवन की सुगन्ध महकती है। ठेठ व देशज शब्दों के प्रयोगों द्वारा उनकी काव्य भाषा और भी धारदार बन जाती है। लोक प्रचलित शब्दों, यथा–'त्यौनार' (कुशलता), 'भटभेरा' (शरीरों का भड़ना) आदि के प्रयोग द्वारा साहित्यिक ब्रज भाषा का लोक से संबंध जुड़ता है।

बिहारी अपने भावों व विचारों की अभिव्यक्ति हेतु 'दोहा' छंद का चयन करते हैं। और इसकी स्पर्द्धा उर्दू के शेर से होती है। गजल का निर्माण इन शेरों द्वारा ही होता है और दरबारी संस्कृति से इन दोहों और शेर का मुक्तक रूप संबंधित है। अत: बिहारी उस स्पर्द्धा से टक्कर लेने के लिए अपनी भाषा में समास शैली का रंग भरते हैं। यथा–

"संगति दोष लगै सबनु, कहेति सांचे बैन।
कुटिल बंक-भुव संग भए कुटिल, बंक-गति नैन।।"

बिहारी की भाषा में समास शैली की रंगत के संदर्भ डॉ.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निम्नांकित कथन महत्त्वपूर्ण है *में बिहारी की भाषा चलती होने पर भी व्यवस्थित है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रजभाषा के कवियों में शब्दों को तोड़-मरोड़कर विकृत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है। भूषण और देव ने शब्दों का बहुत अंग भंग किया है और कहीं-कहीं गढ़ंत शब्दों का व्यवहार किया है। बिहारी की भाषा इस दोष से भी बहुत कुछ युक्त है। दो एक स्थल पर ही 'स्मर' के लिए 'समर' 'ककै' ऐसे कुछ विकृत रूप मिलेंगे।"*

बिहारी की ब्रजभाषा पर बुन्देलखण्डी और अवधी का रंग दिखता ही है साथ ही पूर्वी हिन्दी के शब्दों का भी बहुलता से प्रयोग किया गया।

IGNOU ASSIGNMENT GURU

"स्तन मन नैन नितंब को बड़ो इजाफा कीन।

पिय तिय से हंसिकै कहयौ लखैं डिठौना दीन॥"

'कीन' 'दीन' जैसे शब्द पूर्वी हिन्दी के प्रभाव का ही परिणाम है। 'लखबी', 'कारेबी' के साथ-साथ स्यों जैसे बुन्देलखण्डी शब्दों का प्रयोग उन्होंने अपने दोहों में बेझिझक किया है। इसके अतिरिक्त बिहारी प्राकृत, अपभ्रंश एवं डिंगल शब्दों का भी सुन्दर प्रयोग अपनी कृति में करते हैं। अच्छ, बिज्ज, कज्जल, छाई आदि जैसे शब्द इन्हीं के उदाहरण हैं–

"शनि कज्जल चरिख झकि दृगन उपज्यों सुदिन सनेह।" 'सबी' 'गरूक', 'इजाफा', 'कबूल', 'रकम', 'बाज' 'पायंदाज' जैसे अरबी-फारसी के शब्दों के प्रयोग में भी बिहारी अपनी कुशलता दिखाते हैं। यथा–

'लिखनि बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।'

'दृग पगन पोछन को किए भूषण पायंदाज।'

इनके अतिरिक्त बिहारी संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रयोग से भी परहेज नहीं करते। उनके दोहों मे 'चित्र', 'अनुरागी', 'संपत्ति', 'मृग', 'मोहन', 'प्रभात', 'प्रभा' आदि जैसे शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है। यथा–

"या अनुरागी चित्र की गति सामुझे नहि कोय।"

× × ×

"रणित भृंग घंटावली, मंद मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज समीर।" जैसी पंक्तियों की अद्भूत वर्ण-मैत्री द्वारा भाषा में नाद-सौन्दर्य व ध्वन्यात्मकता का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है जो भाषिक-सौन्दर्य को और भी बढ़ाता है।

मुहावरे और लोकोक्तियों के सीधे प्रयोग द्वारा बिहारी की काव्य-भाषा में जीवंतता आ गई है।

"सूधों पांव न धरि परत सोभा ही के भार।

परत गांठ दुरजन हिये दिई नई यह रीति।"

काव्य में बिंबों की सार्थक योजना बिहारी के कवि व्यक्तित्व को विशिष्ट बना देती है। वे अपनी रचना में बिंबों की निर्माण सदा एक ही प्रकार से नहीं करते हैं। उनका जीवन एवं परिवेश दोनों ही मिलकर बिंबों का निर्माण करते हैं। कवि कल्पना की समाहार शक्ति द्वारा अपने अनुभूत भागों व विचारों को मूर्त रूप देता है। बिंबों की विविधता इनकी कविता को सुन्दर बनाती है। यहाँ नर-नारी के आदिम बिंबों के साथ-साथ ऐन्द्रिय बिंब सहजता से देखने को मिलते हैं। आदिम बिंब का एक उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें कवि दर्शाता है कि किस प्रकार राधा (नारी) का स्मरण करते ही कृष्ण (नर) का चित्र हरा-भरा हो उठता है।

"जातन की झांई परयो, स्याम हरित दुति होय।"

स्मृति बिंब का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

"नासा मोरि नचाय दृग करी का की सौंह।

कांटे सी कसकति हिए अजौ कटीली भौंह॥"

नायिका, नायक से नाक मरोड़कर, दृग (आँखें) नचाकर कका (पिता) की सौगंध खाकर चली जाती है। उसकी कंटीली भौंह नायक के हृदय में कांटे-सी चुभती रहती है।

बसंत ऋतु में चलने वाली मंद-मंद पवन का सुन्दर बिंब कवि कुछ इस प्रकार खींचता है–

"रणित भृंग घंटावली झटत दान मधुर नीर।

मंद मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज शरीर॥"

बसंती पवन हाथी की भांति मंद मंद चल रहा है जिससे कानों में घंटा ध्वनि एवं भौरों की गुंजार सुनाई पड़ने लगती है।

इतना ही नहीं कवि अपने युग के सामंती परिवेश को भी अपनी बिंब विधान की सर्जनात्मक शक्ति के द्वारा मूर्त रूप देते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में नायक 'भरे भौन' में नायिका से प्रणय निवेदन कर रहा है–

"कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे भौन मे करत है, नैनन ही सौं बात॥"

प्रस्तुत बिंब में कवि ने शब्दों का चयन बहुत ही सावधानी से किया है। नेत्र के अलावा दूसरी किसी इन्द्रिय का सीधा प्रयोग नहीं है। बिहारी रीतिशास्त्रीय ग्रन्थों के नियमों व युग की सीमा के कारण स्वच्छंद शृंगार वर्णन हेतु अप्रस्तुत विधान का सहयोग लेते हैं। किन्तु कभी-कभार सीमाओं का उल्लंघन बिहारी करते हैं और रंगीन बिंबों का निर्माण करते हैं। यथा- कृष्ण के पीताम्बर की पीत आभा से प्रात:कालीन प्रभात की धूप से सादृश्य का बिंब–

"सोहत ओढ़े पीत पर स्याम सलोने गात।

मनौ नीलमणि सैल पर आत परयो प्रभात॥"

इसके अतिरिक्त बहुत से स्थलों पर बिहारी अपनी स्वच्छंद कल्पना शक्ति द्वारा नये बिंबों की भी रचना करते हैं।

"जय, माला, छाया तिलक सरै न एकौ काम।
मन कांचै नाचै विथा, साँचै राँचै राम॥"

बिहारी के दोहों में पूरी रीतियुगीन मानसिकता मूर्तिमान हो उठती है। राधा-कृष्ण के माध्यम से कवि इस मानसिकता को अभिव्यक्ति देता है। नायिका 'राधा' अपने घुंघराली लटों में अंगुरी फंसाकर चंचल दृष्टि से नंदकुमार (नायक) को निहारती और सारी बात नेत्रों से ही कर लेती है–

"कंजनयन मंजन किर बैठि व्योरति बार।
कच उगरिन बिंच दीठि दै चितवति नंद कुमार॥"

अतएव उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि बिहारी की बिंब योजना उनकी काव्यात्मक शक्ति को और भी शक्तिमान करती है और 'गागर में सागर' भरने की कला को और भी निखार देती है।

(ङ) भारतेंदुयगीन काव्य की विशेषता बताइए।

उत्तर–इस युग में विषय-वस्तु की दृष्टि से बहुत-से परिवर्तन हुए। परंपरागत चली आ रही काव्य-सामग्री या विषय-वस्तु का स्थान समसामयिक विषयों एवं तद्युगीन समाज में व्याप्त समस्याओं ने ले लिया। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि परंपरागत विषय से इस आधुनिक युग में प्रवेश करते कवि ने स्वयं को झटक कर तोड़ लिया। परंपरागत श्रृंगारिक रचनाएँ इस युग में लिखी गईं। स्वयं आधुनिक युग के प्रणेता हरिश्चन्द्र ने 'कर्पूर मंजरी' नामक श्रृंगारिक रचना लिखी। इसमें से नायिका भेद के एक सवैये का उदाहरण द्रष्टव्य है:

"गोरों से रंग उमंग भरयो चित्त, अंग अनंग को मंग जगाए
काजर रेख खुभी दृग में, दोऊ भौहन काम कमान चढ़ाए
आवनि बोलनि डोलनि ताकी, चढ़ी चित्त में अति चोप बढ़ाए
सुंदर रूप सौ नैनन में बस्यो, भूलत नाहिनै क्योंहू भूलाएँ।"

श्रृंगार के अतिरिक्त इस युग में भक्तिभाव से परिपूर्ण रचनाएँ भी लिखी गईं। भारतेन्दु एवं उनके मण्डल के सभी कवियों ने भक्तिपरक रचनाएँ लिखीं। भारतेन्दु मण्डल के प्रतिभावान कवि बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' कृष्ण की रूप-माधुरी का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि

"छहरै मुख पै घनश्याम से केश, इतै सिर मोर पंखा फहरे
उत गोल कपोलन पै अति लोल अमोल लली मुकट लहरै
इहि भाँति सों बद्रीनारायण जू दोऊ देखि रहे जमुना लहरै
निति ऐसे सनेह सों राधिका श्याम हमारे हिये में सदा बिहरैं।"

यह तो भारतेन्दु युग में परिपाटी के अनुसरण के अनुसार की गई रचनाओं के विषय में बात थी। अब हम उन विषयों की बात करेंगे, जो परंपरा से हटकर नवीन विषय थे; जैसे राजभक्ति एवं देशभक्ति के विषय। 1858 के अंग्रेजी घोषणापत्र से लोगों में अंग्रेजी सरकार के प्रति विश्वास जागा था। लोगों को लगा था कि अब भारतीयों की दशा में सुधार होगा। अतएव कवियों ने अंग्रेजी शासन के प्रति अपनी आस्था दिखाई।

अपने काव्य-लेखन में उन्हें आशीषें दीं। स्वयं भारतेन्दु भी रानी विक्टोरिया की प्रशंसा के पुल बांधते हैं।

"पूरी अमी की कटोरिया की चिरजीओ सदा विक्टोरिया रानी
पालो प्रजावन को सुख सो जग कीरति-जान करे गुनी जानी॥''

'प्रेमधन' लिखते हैं:

"तेरे सुखद राज की कीरति रहे अटल इस
धर्मराज, रघु, राम प्रजा हिय में जिमि अंकित।"

राजकुमार विक्टर का जब 1890 में भारत आगमन हुआ, तो इस अवसर पर प्रतापनारायण मिश्र लिखते हैं:

'हरि शशि संवत पांच मँह, सित पख अगहन मास।
श्री विक्टर आगमन से भयो हिंद सुखं रास।'

लेकिन जब कवियों का अंग्रेजी राज से मोह भंग हो गया और उन्होंने उनके असली चेहरे को पहचान लिया, तब उनमें देशभक्ति का जज्बा जागृत हुआ और उन्होंने स्वतंत्रता हेतु जनजागरण की आवश्यकता को भी महसूस किया। ऐसे में उनके काव्य की विषय-वस्तु इस उद्देश्य के अनुकूल होने लगी। अतीत का गौरव-गान कर उन्होंने भारतीयों की चेतना को जाग्रत करने का सम्यक् प्रयास किया। भारतेन्दु जी लिखते हैं कि

"कहँ गए विक्रम भोज राम बनि कर्ण युधिष्ठिर
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर
कहँ छत्री सब मो जो सब गए कितै गिर
कहाँ राज को तौन साज जोहि जानत है चिर।"

भारतेन्दु जी अपनी रचना 'भारत-दुर्दशा' के अंतर्गत सभी से मिलकर भारत की दुर्दशा पर विचार करने का अनुरोध करते हैं कि

"रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण को भारतेन्दु एवं उनके मण्डल के कवियों ने भली-भाँति समझा और अंग्रेजों की आर्थिक नीति की पहली मीमांसा भारतेन्दु करते हुए लिखते हैं:

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।"

अपनी 'अंधेर-नगरी' रचना के अंतर्गत अंग्रेजों की टैक्स नीति पर वे लिखते हैं:

'चना हाकिम लोग जो खाते
सब पर दूना टिकस लगाते।'

प्रेमधन टैक्स के संदर्भ में लिखते हैं कि

'रोओ सब मुँह बाय-बाय
हाय टिकस हाय-हाय।'

इसके अतिरिक्त तद्युगीन कवियों ने निज भाषा की उन्नति के लिए भी प्रयास किये। इस संदर्भ में भारतेन्दु जी लिखते हैं-

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।'

प्रतापनारायण मिश्र भी हिन्दी को निज भाषा बनाने के लिए प्रेरित करते हुए लिखते हैं:

"देवनागरिहि गरै लगाओ यैहो मोद महान
रहो निशंक मद माते श्री परताप समान।"

इस प्रकार तद्युगीन काव्यधारा में प्राचीनता और अर्वाचीनता का समावेश हुआ। जहाँ कवियों ने परंपरागत परिपाटी का अनुसरण किया, वहीं युग के अनुरूप नये विषयों को भी काव्य की विषय-वस्तु बनाया और समाज में जागृति लाने का सम्यक् प्रयास किया।

रीतिकाल में अवधी एवं ब्रज को ही साहित्य की भाषा माना जाता था। प्रमुख रूप से काव्य की भाषा ब्रज ही मानी जाती थी। भारतेन्दु युग में भी इससे कवियों का मोह भंग नहीं हुआ था, लेकिन खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में स्वीकार किया जाने लगा था। अब यह मान्यता टूटने लगी थी कि काव्य की भाषा केवल 'ब्रज' ही हो सकती है। भारतेन्दु युग में भाषा सहज एवं स्वाभाविक होती चली गई। रीतिकालीन कृत्रिमता, अलंकारिकता एवं चमत्कारिकता को भारतेन्दु युग के कवियों ने समाप्त कर दिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस परिवर्तन के अग्रदूत बनकर आये। उन्होंने जनसामान्य की भाषा को काव्य-भाषा के रूप में ग्राह्य बनाने के प्रयास किये। तत्सम शब्दों के अतिरिक्त तद्भव शब्दों का अंगीकार किया।

इनके अतिरिक्त मुहावरों एवं लोकोक्तियों के सुन्दर व स्वाभाविक प्रयोग द्वारा साहित्य को जनसामान्य से जोड़ दिया गया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं,

"फरियाद पिया की हाय आँख भरि आई
'हरिचंद' घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत।"

प्रस्तुत पंक्तियों के अंतर्गत 'आँख भर आना' 'घर-घर के भौंरा' एवं 'मतलब के मीत' मुहावरों का सहज ही प्रयोग हुआ है। अब एक लोकोक्ति का उदाहरण द्रष्टव्य है-

"जलपान के पूछनी जाति नहीं
माछर मारे जल ही हाथ
ऊँची दुकान की फीकी मिठाई।"

'ऊँची दुकान की फीकी मिठाई' लोकोक्ति है।

प्रतापनारायण मिश्र का 'लोकोक्ति शतक' तो कहावतों का भण्डार है:

"व्यापक ब्रह्म सदा सब ठौर बादि चारिधामन की दौर।
का न देखु मन नयन उघारि, कनियाँ लरिका गाँव गुहार।।"

इस प्रकार भारतेन्दु युग की भाषा अपने युग की भाषा बनी। जिस जनचेतना की आवश्यकता थी, उस चेतना को 'ब्रज' जैसी 'कोमलकान्त पदावली' वाली भाषा द्वारा जागृत किया जाना संभव नहीं था। अतएव खड़ी बोली की कविता की परंपरा की शुरूआत जो अमीर खुसरो की मुकरियों एवं कबीर के दोहों से हुई थी, उसे पूर्ण परिणति भारतेन्दु युग में प्राप्त हुई। खड़ी बोली की अभिव्यक्ति की क्षमता का तद्युगीन कवियों ने जमकर उपयोग किया।

शैली के क्षेत्र में भी भारतेन्दु युग में प्राचीनता एवं अर्वाचीनता के समावेश के रूप देखने को मिलते हैं। जहाँ परम्परागत काव्य शैलियों को कवि ने छोड़ा नहीं, वहीं नवीन शैलियों को भी काव्य से उन्होंने जोड़ा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अमीर खुसरो की मुकरियों की तर्ज पर आधुनिक काल की मुकरियों का लेखन किया:

"सब गुरुजन को बुरा बतावै।
अपनी खिचड़ी अलग पकावै।
भीतर तत्त्व न झूठी तेजी।
क्यों सखि साजन नहीं अंग्रेजी।"

× × ×

छन्द विधान की दृष्टि से भी तद्युगीन कवियों ने परंपरागत छंदों-दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय, पद, कुण्डलिया आदि का प्रयोग किया। सर्वाधिक रचनाएँ सवैया छंद में की हैं। लोकजीवन को काव्य में उतारने हेतु कवियों से लावनी, कजरी, होरी, बारहमासा, गाली, सेहरा, चैता आदि छन्दों का भी प्रयोग किया। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:

लावनी–

"बीत चली सब रात न आए अब तक दिल जानी।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी।
अंधेरी छाय रही भारी।

इस प्रकार भारतेन्दुयुगीन काव्य में परंपरागत छंदों के साथ-साथ लोक से संबंधित छदों एवं तद्युगीन समस्याओं के चित्रण हेतु नवीन छंदों का भी विधान किया गया और उन्हें काव्य में प्रयुक्त किया गया।

IGNOU ASSIGNMENT GURU

प्रश्न 3. निम्नलिखित में से प्रत्येक पर लगभग 300 शब्दों में टिप्पणियाँ लिखिए–

(क) जयशंकर प्रसाद

उत्तर–छायावादी कवि का प्रकृति के प्रति असीम स्नेह रहा है। वह उसके साथ एकाकार हो जाना चाहता है इसीलिए वह उसे अपनी सहचरी के रूप में देखता है और उसके सौन्दर्य के आलोक में खो जाना चाहता है। प्रसाद को भी प्रकृति से विशेष स्नेह था जिसके कारण उन्होंने अपनी रचनाओं में सुन्दर व सूक्ष्म चित्र खींचे हैं। मानव मन में उठने वाले विविध विचारों की लहरों को रूपायित करता हुआ कवि लिखता है–**"उठ-उठ री लघु-लघु लाल लहर"** और कभी लहरों के उतार-चढ़ाव द्वारा विरही प्रेमी के हृदय की अनुभूति को अभिव्यक्ति देते हुए लिखता है–

"तब लहरों सा उठकर अधीर
तू मधुर व्यथा सा शून्य चीर
सूखे किसलय का भरा पीर।
गिर जा पतझड़ का सा समीर।"

कवि 'प्रकृति' के इन उपादानों द्वारा विरही हृदय की वेदना को ही अभिव्यक्ति नहीं देता अपितु प्रिय के मिलन के क्षणों को समीप देखकर, नवीन स्फूर्ति, 'उत्साह', उमंग, हृदय के बेकाबू होते भावों का भी सुन्दर निरूपण करता है।

कभी वे प्रकृति का आलंबन रूप में तो कभी उद्दीपन रूप में चित्रण करते हैं। कवि अपने भावानुरूप प्रकृति को कभी हँसते तो कभी रोते हुए देखता है–

"लहरों ने यह क्रीडा चंचल,
सागर का उद्वेलित अंचल,
है पौंछ रहा आंखें छल छल,
किसने यह चोट लगाई है।"

कहीं वे उसे नायिका के रूप में चित्रित करते हैं, यथा–**'अब जागो जीवन के प्रभात'** में कवि ऊषा को पृथ्वी पर ओस के क्षोभ भरे हिमकण-अश्रु' को बटोरती नायिका के रूप में चित्रित करते हैं। इसी प्रकार कवि ने 'कामायनी' व 'लहर' में प्रकृति का सुन्दर मानवीकरण किया है। 'कामायनी' से इस मानवीकरण का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत है–'जलप्लावन' के पश्चात् जब धरती कुछ-कुछ दिखने लगती है तो कवि का मन कल्पना करता है–

"सिंधु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में,
मान किये सी ऐंठी सी।"

वस्तुतः प्रसाद ने अपने सूक्ष्म कलात्मक कौशल द्वारा प्रकृति का रहस्यात्मक, उपमान, प्रतीक, मानवीकरण, दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक बहुत-से रूपों में चित्रण किया है। प्रकृति का हृदयग्राही चित्रण प्रसाद की रचनाओं में चार चाँद लगाता है।

सौन्दर्य-चेतना की अभिव्यक्ति प्रसाद की रचनाओं में प्रकृति चित्रण में ही नहीं अपितु 'नारी' के रूप चित्रण व 'गीति शैली' की काव्य रचना में भी मिलती है। छायावादी काव्य में नारी के मांसल सौन्दर्य पर बल दृष्टिगोचर नहीं होता अपितु अन्तरत्मा के सौन्दर्य का चित्रण इसका लक्ष्य है। प्रसाद के काव्य में भी 'नारी' के आन्तरिक सौन्दर्य के निरूपण पर विशेष बल दृष्टिगोचर होता है। वे नारी के सुकोमल हृदय, दया भावना, क्षमाशीलता व ममता आदि गुणों पर अपनी दृष्टि जमाते हैं। नारी का बाह्य लावण्यमय रूप तो उन्हें आकर्षित करता ही है किन्तु उस पर उसका आंतरिक सौन्दर्य सोने पर सुहागे का काम करता है।

'कामायनी' में वे 'नारी' के हृदयगत सौन्दर्य को अभिव्यक्ति देते हुए लिखते हैं–

"मनु ने देखा कितना विचित्र। वह मातृ मूर्ति थी विश्वमित्र"
"तुम देवि आह कितनी उदार, यह मातृ मूर्ति है निर्विकार
हे सर्वमंगले! तुम महती सबका दुख अपने पर सहती,
कल्याणमयी वाणी कहती तुम क्षमा निलय में हो रहती"

वस्तुतः प्रसाद ने नारी को नया रूप, नयी शक्ति के रूप में चित्रित किया है। अपने से पूर्व के कालों में निकृष्ट कोटि की मानी जाने वाली नारी को वे मानव होने का दर्जा ही नहीं देते अपितु देवि रूप में चित्रित करते हैं।

प्रसाद जी के काव्य का गीति-सौन्दर्य भी अनुपम है। लय, गति, ध्वनि व गुंजन के द्वारा कवि ने हृदयगत तीव्र भावानुभूतियों को सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है। इनके गीतों में भावों की प्रधानता के साथ-साथ विचार, प्रकृति, रहस्य व जीवन-दर्शन की प्रधानता उल्लेखनीय है। इन गीतों में इन्होंने अपने स्वयं के उद्गारों को स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

(ख) प्रगतिवाद

उत्तर–वस्तुत: 'प्रगतिवाद' अपने अर्थों में है क्या? इस प्रश्न को लेकर विद्वानों में अच्छा-खासा भेद है। कोई इस युग की रचनाओं को प्रगतिवादी रचनाएँ कहता है तो कोई प्रगतिशील साहित्य। वस्तुत: प्रगतिवादी और प्रगतिशाली शब्दों में कुछ लोग अंतर मानते हैं। इस मान्यता वाले लोगों का मानना है कि 'प्रगतिशील, 'प्रगतिवाद' से अधिक व्यापक पृष्ठभूमि का शब्द है जिसमें विस्तृत मानवीय सरोकारों को अभिव्यक्ति दी गई है और जबकि प्रगतिवाद मात्र मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित कृतियों का साहित्य है। लेकिन इस युग विशेष के संदर्भ में ऐसा भाव रखना सर्वथा उचित नहीं। वस्तुत: 'प्रगतिवादी आंदोलन' में युगीन चेतना को, सामाजिक यथार्थ को, गहरी जीवन-शक्ति को, वर्ग-चेतना को, प्रतिबद्धता व परिवर्तन के लिए सचेतता को प्रखर अभिव्यक्ति मिली है। इस साहित्य में भविष्य के लिए जीवन दृष्टि के दर्शन होते हैं। शिल्प के स्तर पर इसकी शैली सहज व सरल है तो शैली में व्यंग्य की प्रखरता व तीक्ष्णता भी है।

प्रगतिवादी साहित्य में कवि के इतिहास बोध को व्यापक स्थान दिया गया है। नागार्जुन ने अपनी महत्त्वपूर्ण कविता 'शासन की बंदूक' में विदेशी शासन द्वारा किए जा रहे दानवी दमन का जीवंत चित्रण करने के साथ-साथ इस दमन चक्र के विरुद्ध पैदा हो रही आक्रोश व विद्रोह की भावना का रेखांकन किया है।

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की रचनाओं में यह ऐतिहासिक बोध और भी अधिक सघन व जटिल रूप में प्रकट हुआ है।

सामाजिक यथार्थ का इस युग के कवियों ने विविध रूपों में चित्रण अपनी कविताओं में किया है। वर्ग चेतना प्रधान दृष्टि इन कवियों की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही।

प्रगतिवादी कवियों का प्रकृति और अपने परिवेश के प्रति विशेष रूझान दृष्टिगोचर होता है। वे प्रकृति में जीवन की खोज करते दिखाई देते हैं जोकि बिना लगाव के नहीं किया जा सकता। किन्तु उनका प्रकृति प्रेम यथार्थ के कटु अनुभव से रिक्त नहीं। नागार्जुन 'धूप' को मात्र आकर्षित करने वाला प्राकृतिक उपादान नहीं मानते। उनके लिए 'धूप सुहावन' गरीबी के कष्टों को व्यक्त करने वाली है। प्रगतिवादी कवियों ने कविता के संरचना-शिल्प को कोई महत्त्व नहीं दिया जबकि यह सर्वविदित है कि भावों और विचारों की अभिव्यक्ति बिना संरचना-शिल्प के संभव नहीं। वस्तुत: प्रगतिवादी कवियों के प्रति यह धारणा निराधार है। इन कवियों ने संरचना-शिल्प को भी उतना ही महत्त्व दिया जितना कि वस्तु-विधान को। अपने भावों व विचारों को अभिव्यक्ति देने के लिए ये जहाँ शिल्प के विविध रूपों का प्रयोग करते हैं वहीं नये-नये प्रयोग भी अपने भावों को अभिव्यक्त करने हेतु करते हैं।

शिल्प-संरचना के विविध उपकरण, यथा–भाषा, अप्रस्तुत-विधान, बिंब व प्रतीक विधान आदि सभी का प्रयोग इन्होंने अपने भाव-विचारों को सशक्त अभिव्यक्ति देने हेतु किया है। 'संप्रेषणीयता' से अधिक महत्त्व इन्होंने किसी को नहीं दिया। सहजता, प्रखरता, स्पष्टता, व्यंग्यविदग्धता, चित्रात्मकता, तीक्ष्णता, साहस आदि इनकी काव्य-भाषा के महती गुण हैं।

■■

ASSIGNMENT IGNOU GURU